

[2013] 3 ऐसेसीआर 96

अरूण भंडारी बनाम उत्तरप्रदेश राज्य व अन्य

(आपराधिक अपील संख्या 78/2013)

जनवरी 10, 2023

[पीठ न्यायाधिपति के.ऐसे. राधाकृष्णन व न्यायाधिपति दीपक मिश्रा]

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226- वाणिज्यिक लेन-देन-इसके बाद, खरीदार ने विक्रेताओं के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 406 व 420 के तहत आपराधिक मामला दर्ज किया- पुलिस रिपोर्ट के अनुसार मामला सिविल प्रकृति का था और कोई आपराधिक अपराध नहीं बनाया पाया गया था- शिकायतकर्ता द्वारा विरोध याचिका में, सीजेएम ने मामले का संज्ञान लिया-सीजेएम के आदेश के खिलाफ रिट याचिका-उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्तों में से एक के संबंध में आपराधिक मामला रद्द कर दिया गया- प्रतिपादित: एक मामला जो स्पष्ट रूप से सिविल प्रकृति का प्रतीत हो सकता है, उसमें आपराधिक मामलों के तत्व भी हो सकते हैं- तत्काल मामले के तथ्यों से पता चलता है कि यह विशुद्ध रूप से सिविल प्रकृति का नहीं था-न तो प्राथमिकी और न ही विरोध याचिका दुर्भावनापूर्ण,

तुच्छ थी या परेशान करने वाला थी, इसलिए उच्च न्यायालय का अनुच्छेद 226 के क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप उचित नहीं था- प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्त के खिलाफ बनाया पाया गया कि उनका इरादा धोखा देने का था- दंड संहिता, 1860-धारा 406 और 420।

प्रत्यर्थी सं. 2 और उनके पति प्रत्यर्थी सं. 3, ने विचाराधीन संपत्ति के मालिक होने का दावा किया और अपीलार्थी को बेचने की पेशकश की। उन्होंने संयुक्त रूप से बिक्री प्रतिफल के आंशिक भुगतान के लिए अपीलार्थी से रु. 1,05,00,00/- की राशि प्राप्त की। मूल आवंटी द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में एक समझौता प्रत्यर्थी संख्या 3 के पक्ष में पंजीकृत समझौते के आधार पर प्रश्नगत संपत्ति को बेचने के लिए निष्पादित किया गया। अपीलार्थी को पता चला कि प्रत्यर्थी नं 2, जिनके पक्ष में मूल आवंटी ने पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की थी, वह पहले से ही विचाराधीन संपत्ति को किसी ओर व्यक्ति के लिए स्थानांतरित कर चुका था। याचिकाकर्ता ने अग्रिम राशि की धन वापसी की मांग की। जैसा कि वही वापस नहीं किया गया था, उन्होंने एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। पुलिस ने अपनी रिपोर्ट दी कि मामला यह सिविल प्रकृति का था और कोई आपराधिक मामला नहीं बनाया पाया गया था। अपीलार्थी की विरोध याचिका पर, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (सी. जे. एम.) ने अभिनिर्धारित किया कि भले ही मुकदमा दायर किया जा सके, मामले के तथ्यों से आपराधिक मामले

का पता चला और इसलिए उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 420 व 406 के तहत संज्ञान लिया। आदेश के खिलाफ आपराधिक पुनरीक्षण को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट आदेश को मंजूरी देते हुए खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को प्रत्यर्थी संख्या 3 के संबंध में यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 420 व 406 के तहत प्रथम दृष्टया मामला था। जहां तक प्रत्यर्थी संख्या 2 का संबंध है, याचिका को यह कहते हुए अनुमति दी गई कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और शिकायतकर्ता के बीच अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं थी। इसलिए शिकायतकर्ता द्वारा वर्तमान अपील।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित:

1. उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 की शक्ति का प्रयोग करते हुए बहुत सतर्क दृष्टिकोण अपनाना होगा। उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत प्राप्त शक्तियाँ बहुत व्यापक और शक्ति की बहुत अधिकता में प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती हैं। न्यायालय को यह देखने के लिए सावधान रहना चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में इसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित हो और ऐसी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग वैध अभियोजन को दबाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय के लिए यह उचित नहीं है कि वह सभी संभावनाओं के आलोक में

शिकायतकर्ता के मामले का विश्लेषण करे ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि कोई दोषसिद्धि सतत होगी या नहीं और ऐसे आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कार्यवाही रद्द कर दी जाए। सामग्री का अवलोकन करने से पहले आकलन करना और यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि शिकायत पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। सावधानीपूर्वक मामले का विश्लेषण आवश्यक नहीं है और शिकायत को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और यदि शिकायतकर्ता के शपथ पर दिए गए बयान के आलोक में आरोपों पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपराध या अपराधों की सामग्री का खुलासा किया गया है और यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि शिकायत दुर्भावनापूर्ण, निष्पक्ष, तुच्छ या परेशान करने वाला, उस स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का कोई औचित्य नहीं है। इनमें से एक वरिष्ठ न्यायालय के कर्तव्यों में ये एक सर्वोच्च कर्तव्य यह देखना है कि व्यक्ति जो पूरी तरह से निर्दोष है, उस पर झूठी और पूरी तरह से असमर्थनीय शिकायत के आधार पर मुकदमा और अपमान नहीं किया जा सकता है। (पैरा 27), (983-सी-जी, 984-ए)

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो बनाम रविशंकर श्रीवास्तव, आई. ए. ऐसे. और अन्य (2006) 7 ऐसेसीसी 188; 2006 (4) पूरक ऐसेसीआर 450; और कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता और अन्य। (2009) 1 ऐसेसीसी 516; 2008 (14) ऐसेसीआर 1249; ज्ञान सिंह बनाम। पंजाब राज्य और एन.

और. (2012) 10 ऐसैसीसी 303: 2012 (8) ऐसैसीआर 753-पर निर्भर। जनता दल बनाम एच. ऐसे. चौधरी (1992) 4 ऐसैसीसी 305: 1992 (1) पूरक ऐसैसीआर 226; रघुवीर सरन (डॉ.) बनाम बिहार राज्य ए. आई. और 1964 ऐसे. सी 1: 1964 ऐसे. सी. और. 336; हमीदा बनाम राशिद (2008) 1 ऐसैसीसी 474: 2007 (5) ऐसे. सी. और. 937; उड़ीसा राज्य बनाम सरोज कुमार साहू (2005) 13 ऐसे. सी. सी. 540: 2005 (5) पूरक ऐसैसीआर 548- संदर्भित किया गया।

2. वर्तमान मामले में न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट और न ही विरोध याचिका दुर्भावनापूर्ण, तुच्छ या परेशान करने वाली थी। यह भी नहीं है एक मामला जहाँ शिकायत में कोई सार नहीं है। जिस तरीके से जांच उस अधिकारी द्वारा की गई थी जिसने अंततः अंतिम रिपोर्ट दाखिल की और जांच को पहले किसी अन्य अधिकारी को हस्तांतरित करना जिसने जांच और पूरी केस डायरी को लगभग पूरा कर लिया था जिसे विरोध याचिका में विस्तार से बताया गया है, प्रथम दृष्टया पति के खिलाफ मामला बनाती है और पत्नी की मिलीभगत और शुरू से ही धोखा देने का इरादा, उसे उन दोनों को एक बड़ी राशि सौंपने के लिए प्रेरित करना। उनकी इतने सारे पहलुओं का उल्लेख न करने का आचरण, अर्थात् मूल मालिक द्वारा निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी, वसीयत और पत्नी द्वारा 'एम' के नाम पर

दिनांक 28.07.2008 को की गई बिक्री को भी इस स्तर पर अलग नहीं किया जा सकता है। (पैरा 31) (985- ई-एच; 986-ए)

3. कभी-कभी कोई मामला स्पष्ट रूप से सिविल प्रकृति का प्रतीत हो सकता है या इसमें वाणिज्यिक लेनदेन शामिल हो सकता है लेकिन कुछ ऐसे सिविल विवाद या वाणिज्यिक विवाद में अपराध के तत्व भी हो सकते हैं। अपराधों और ऐसे विवादों पर विचार किया जाना चाहिए। वर्तमान में मामला उस श्रेणी में आता है, यह इस स्तर पर विशुद्ध सिविल प्रकृति का स्वीकार करिए गए दस्तावेज या एफआईआर में लगाए गए आरोप या जांच में या विरोध याचिका में कहा गया है, इस आधार पर नहीं कहा जा सकता है कि प्रथम दृष्टया यह आरोप है कि शिकायतकर्ता को पैसे देने के लिए प्रेरित करने का अपराध करने का इरादा था यह वह मामला नहीं है जहां शुरू में करिए गए वादों को बाद में पूरा नहीं किया जा सका। यह ऐसा मामला नहीं है जहां यह कहा जा सके कि भले ही आरोपों को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए, कोई मामला नहीं बनता है। (पैरा 24 और 27) (981-ए-बी; 983-ए-सी)

मोहम्मद इब्राहिम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य। (2009) 8 एसे. सी. सी. 751; राजेश बजाज बनाम दिल्ली राज्य राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (1999) 3 एसेसीसी 259: 1999 (1) एसेसीआर 1012-पर निर्भर।

ऑल कार्गो मूवर्स (1) प्रा. लि. लिमिटेड बनाम धनेश बदरमल जैन और एनआरएआई और. 2008 ऐसेसी 247: 2007 (11) ऐसेसीआर 271-संदर्भित को।

4. इसलिए उच्च न्यायालय असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए संज्ञान लेने के आदेश को निरस्त करने के लिए कानून के ठोस सिद्धांतों पर आगे नहीं बढ़ा था। उच्च न्यायालय को अनुबंध की गोपनीयता के अस्तित्व के अभाव तथा तथ्यात्मक परिदृश्य कि पत्नी मात्र उपस्थित थी, की विवेचना किए बिना निर्देशित किया गया था। जब पत्नी के पक्ष में पावर ऑफ अटोर्नी थी और उसे वसीयत के निष्पादन के बारे में पता था, उसने अपने पति के साथ, शिकायतकर्ता से पैसे स्वीकार किए थे। यह कहना बेहद मुश्किल है कि एक निर्दोष व्यक्ति को एक परेशान करने वाले मुकदमे या अपमान का सामना करने के लिए घसीटा गया है। प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 का पूरा आचरण यह दिखाता है कि एक प्रथम दृष्टया मामला बनता है और इस संबंध में आरोप दर्ज हैं कि उनका इरादा बातचीत के चरण से ही धोखा देने का था। (पैरा 31) (986-ए-डी)

हृदय राजन पी. डी. वर्मा और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य एआईआर 2000 ऐसेसी 2341: 2000 (2) ऐसेसीआर 859; मुरारी लाल गुप्ता बनाम गोपी सिंह (2006) 2 ऐसे. सी. सी. (सीऔरएल) 430; बी.

सुरेश यादव बनाम शरीफा बी और अन्य (2007) 13 ऐसेसीसी 107:
2007 (11) ऐसेसीआर 238-प्रतिष्ठित।

हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 पूरक (1) ऐसे. सी. सी.
335: कंवर पाल सिंह गिल एयर 1996 ऐसेसी 309: 1995 (4) पूरक ऐसे.
सी. और. 237; केरल राज्य बनाम ओ. सी. कुट्टन एआईआर 1999 ऐसे.
सी. 1044: 1999 (1) ऐसे. सी. और. 696; केरल राज्य बनाम ए. परीद
पिल्लई और एनआरएआई और. 1973 ऐसे. सी. 326 य जी. वी. राव
बनाम एल. एच. वी. प्रसाद और अन्य। (2000) 3 ऐसेसीसी 693: 2000
(2) ऐसे. सी. और. 123; जसवंतराई मणिलाल अखाने वी। बॉम्बे राज्य ए.
आई. और. 1956 ऐसे. सी. 575: 1956 ऐसेसीआर 483; महादेव प्रसाद
बनाम राज्य डब्ल्यू. बी. ए. आई. और. 1954 ऐसे. सी. 724; ऐसे. एन.
पलानीटकर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 2001 ऐसेसी 2960:
2001 (4) पूरक। ऐसे. सी. और. 397 संदर्भित है।

नजीरी कानून संदर्भ:

2000 (2) ऐसेसीआर 859, प्रतिष्ठित पैरा 11

(2006) 2 ऐसेसीसी (सीआरआई) 430, प्रतिष्ठित पैरा 11

2007 (11) ऐसेसीआर 238, प्रतिष्ठित पैरा 11

1990 (3) पूरक ऐसेसीआर 259, संदर्भित किया गया है, पैरा 14

1995 (4) पूरक ऐसेसीआर 237, संदर्भित किया गया है, पैरा 14

- 1999 (1) ऐसैसीआर 1012, संदर्भित किया गया है, पैरा 14
- 1999 (1) ऐसैसीआर 696, संदर्भित किया गया है, पैरा 14
- एआईआर 1973 ऐसैसी 32, संदर्भित किया गया है, पैरा 19
- 2000 (2) ऐसैसीआर 123, संदर्भित किया गया है, पैरा 20
- 1956 ऐसैसीआर 483, संदर्भित किया गया है, पैरा 20
- एआईआर 1954 ऐसैसी 724, संदर्भित किया गया है, पैरा 20
- 2001 (4) पूरक ऐसैसीआर 397, संदर्भित किया गया है, पैरा 21
- (2009) 8 ऐसैसीसी 751, उस पर भरोसा किया गया, पैरा 24
- 2007 (11) ऐसैसीआर 27, संदर्भित किया गया है, पैरा 25
- 1999 (1) ऐसैसीआर 1012, उस पर भरोसा किया गया, पैरा 26
- 2006 (4) पूरक ऐसैसीआर 450, उस पर भरोसा किया गया, पैरा

27

- 1992 (1) पूरक ऐसैसीआर 226, संदर्भित किया गया है, पैरा 27
- 1964 ऐसैसीआर 336, संदर्भित किया गया है, पैरा 27
- 2008 (14) ऐसैसीआर 1249, उस पर भरोसा किया गया, पैरा 28
- 2007 (5) ऐसैसीआर 937, संदर्भित किया गया है, पैरा 28
- 2005 (5) पूरक ऐसैसीआर 548 संदर्भित किया गया है, पैरा 28

2012 (8) ऐसिआर 753, उस पर भरोसा किया गया, पैरा 30

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या
2013/78।

उच्च न्यायालय, इलाहाबाद की आपराधिक विविध रीट याचिका 2011
की संख्या 69 में निर्णय व आदेश दिनांकित 29.01.2011 से।

अमित खेमका, अंभोज कुमार सिन्हा, सानोरिटा डी.भाराली- अपीलार्थी
के लिए।

चेतन शर्मा, मंजीत सिंह अहलुवालिया, कमल मोहन गुप्ता-प्रत्यर्थी की
ओर से।

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति श्री दीपक मिश्रा के द्वारा सुनाया
गया।

1. अनुमति दी गई।

2. आपराधिक विविध मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा
पारित आदेश दिनांक 29.1.2011 की कानूनी व्यवहार्यता पर सवाल उठाना।
रिट याचिका संख्या 69/2011 जिसके तहत संविधान के अनुच्छेद 226
और 227 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल
न्यायाधीश ने भारतीय दंड की धारा 406 और 420 के तहत संज्ञान लेते
हुए विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गौतमबुद्धनगर द्वारा पारित दिनांक
5.6.2010 के आदेश को रद्द कर दिया है। दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में

"सीआरपीसी") की धारा 190(1)(बी) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ कोड (संक्षेप में "आईपीसी") और विद्वान द्वारा पारित आदेश दिनांक 4.12.2010 सत्र न्यायाधीश, गौतमबुद्धनगर ने उक्त आदेश की पुष्टि करते हुए इस आधार पर कहा कि न तो एफआईआर में और न ही विरोध याचिका में लगाए गए आरोप उपरोक्त धाराओं के तहत अपराध हैं, विशेष अनुमति द्वारा वर्तमान अपील की गयी है।

3. जैसा दर्शाए गए तथ्यात्मक स्कोर यह हैं कि अपीलकर्ता एक अनिवासी भारतीय (एनआरआई) है जो जर्मनी में रहता है और ग्रेटर नोएडा में एक संपत्ति की तलाश करते समय, वह प्रतिवादी नंबर 2 और उसके पति, रघुविंदर सिंह के संपर्क में आया, जिन्होंने खुद को होने का दावा किया था। प्रश्नगत संपत्ति के मालिक ने उसे बेचने की पेशकश की। 24.3.2008 को, जैसा कि आरोप लगाया गया है, दोनों पति-पत्नी आवासीय प्लॉट संख्या 131, ब्लॉक- (कैसिया-फास्टुला ऐसेटेट), सेक्टर सीएचआई- 4, ग्रेटर नोएडा, यूपी को बेचने के लिए सहमत हुए। 2,43,97,880/- रुपये के प्रतिफल के लिए और उस आशय का एक समझौता प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा निष्पादित किया गया था, दोनों पति और पत्नी ने संयुक्त रूप से आंशिक भुगतान के लिए अपीलकर्ता से 1,05,00,000/- रुपये की राशि प्राप्त की। बिक्री पर विचार. आगे इस बात पर सहमति हुई कि प्रतिवादी नंबर 2 और 3 ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण से अनुमति प्राप्त करेंगे। 2013] 3

968 सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट [2013] 3 एसेसीआर संपत्ति को अपने पक्ष में स्थानांतरित करने और ऐसी अनुमति मिलने के 45 दिनों के भीतर हस्तांतरण विलेख निष्पादित करेंगे। 4. जैसा कि तथ्यात्मक पूर्ववृत्त से पता चलेगा, उक्त समझौते को मूल आवंटी, श्रीमती द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में निष्पादित एक पंजीकृत समझौते के आधार पर निष्पादित किया गया था। वंदना भारद्वाज ने उक्त भूखंड को बेचने के लिए कहा। लगभग एक महीने की समाप्ति के बाद, अपीलकर्ता ने मूल आवंटी से कब्जा देने की प्रगति के बारे में प्रतिवादी नंबर 3 से पूछताछ की, लेकिन उसे विरोधाभासी और विरोधाभासी उत्तर मिले, जिससे उसके मन में संदेह पैदा हुआ और उसे ऐसा करने के लिए मजबूर होना पड़ा। तुरंत नोएडा जाएं और ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण से वास्तविक तथ्यों का पता लगाएं। उचित पूछताछ करने पर, उन्हें पता चला कि श्रीमती द्वारा तीसरे प्रतिवादी के पक्ष में एक पंजीकृत समझौता किया गया था। वंदना भारद्वाज; कि प्रतिवादी संख्या 2, प्रतिवादी संख्या 3 की पत्नी, के पक्ष में मूल आवंटी द्वारा पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की गई थी; कि मूल आवंटी ने, किसी भी प्रकार की मुकदमेबाजी से बचने के लिए, प्रतिवादी संख्या 3 के पक्ष में एक वसीयत भी निष्पादित की थी; और प्रतिवादी नंबर 2 ने मूल आवंटी द्वारा अपने पक्ष में निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर, उक्त संपत्ति को मोनिका गोयल के पक्ष में स्थानांतरित कर दिया था, जिसने ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण के रिकॉर्ड में अपना नाम बदल लिया था। उपरोक्त तथ्यात्मक

स्कोर के बारे में जानने के बाद, उन्होंने उत्तरदाताओं से पैसे वापस करने की मांग की, लेकिन पूरी तरह से उदासीन रवैया दिखाया गया, जिसके कारण उन्हें पुलिस स्टेशन, कासना में एक एफआईआर दर्ज करने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसने 2009 की आपराधिक मामला संख्या 563 को जन्म दिया।

5. जांच अधिकारी ने जांच पूरी करने के बाद अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि मामला दीवानी प्रकृति का था और कोई आपराधिक अपराध नहीं बनाया गया था। अपीलकर्ता ने विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष एक विरोध याचिका दायर की, जिसमें अन्य बातों के अलावा, यह कहा गया कि आरोपी व्यक्तियों ने जांच अधिकारी और स्टेशन हाउस अधिकारी के साथ मिलीभगत की थी, जिसके परिणामस्वरूप जांच अधिकारी ने 22.10.2009 को यह देखते हुए जांच समाप्त कर दी थी कि विवाद दीवानी प्रकृति का था और न्यायालय के समक्ष अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने का इरादा था। अपीलकर्ता को इसके बारे में पता चलने पर संबंधित क्षेत्र अधिकारी के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसने इसे ध्यान में रखते हुए 24.11.2009 को पुलिस के एक अन्य ऐसेऐसेआई को जांच सौंप दी। उक्त जांच अधिकारी ने संबंधित उप-रजिस्ट्रार, ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण के मुख्य कार्याकारी अधिकारी के बयान दर्ज किए, जिनके बयानों से यह स्पष्ट था कि आरोपी व्यक्ति कभी भी विचाराधीन संपत्ति के

मालिक नहीं थे और मूल आवंटी कभी भी पेश नहीं हुआ था। ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने कोई दस्तावेज हस्तांतरित नहीं किया। उन्होंने मूल आवंटी का बयान भी दर्ज किया, जिसने कहा था कि संपित्त 2005 में उसके नाम पर आवंटित की गई थी और उसके पति के दोस्त रघुविंदर सिंह द्वारा संपित्त बेचने के प्रस्ताव पर उसने उसके पक्ष में बेचने का समझौता किया था। और उनके कहने पर उनकी पत्नी सिवता सिंह के नाम पर एक जनरल पावर ऑफ अटॉर्नी थी, लेकिन कब्जा उन्हें नहीं सौंपा गया था। उन्होंने शरद कुमार शर्मा से भी पूछताछ की, जो बेचने के समझौते और मूल आवंटी द्वारा निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी के गवाह थे, और कहा कि शर्मा ने कहा था कि जनरल पावर ऑफ अटॉर्नी को पक्ष में निष्पादित बेचने के समझौते को लागू करने के लिए निष्पादित किया गया था। रघुविंदर सिंह का जांच अधिकारी ने शिकायतकर्ता से एक शपथ पत्र प्राप्त किया जिसे केस डायरी में रखा गया और 25.2.2010 को केस डायरी में यह दर्ज किया गया कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आपराधिक अपराध बनाया गया था। केस डायरी से यह भी पता चला कि सूचक और आरोपी व्यक्तियों के बीच समझौते का प्रयास किया गया था और आरोपी व्यक्ति अपीलकर्ता को 1,05,00,000/ रुपये की राशि वापस करने के लिए तैयार थे। 10.3.2010 को, उन्होंने आईपीसी की धारा 420, 406, 567, 468 और 479 के तहत उत्तरदाताओं के खिलाफ आरोप पत्र दायर करने के लिए एक प्रविष्टि की। इस स्तर पर, आरोपी व्यक्तियों ने फिर से पिछले जांच अधिकारी और

स्टेशन हाउस अधिकारी के साथ मिलीभगत की और जांच को पिछले जांच अधिकारी को स्थानांतरित कर दिया। उक्त घटनाक्रम के बारे में पता चलने पर, अपीलकर्ता ने 6.5.2010 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, गौतमबुद्ध नगर के समक्ष एक याचिका प्रस्तुत की, लेकिन उच्च प्राधिकारी द्वारा कोई कदम उठाए जाने से पहले, उक्त जांच अधिकारी ने एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें कहा गया था कि आईपीसी के तहत कोई अपराध नहीं बनाया गया था।

6. उपरोक्त विरोध याचिका के आधार पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने 5.6.2010 को जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट, पूरी केस डायरी, विरोध याचिका और सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए बयानों का अवलोकन किया। पिछले जांच अधिकारी का मानना था कि भले ही मुकदमा दायर किया जा सकता है, लेकिन तथ्यात्मक स्थिति से प्रथम दृष्टया आपराधिक दोषीता का पता चलता है और तदनुसार, उत्तरदाताओं के खिलाफ आईपीसी की धारा 420 और 406 के तहत संज्ञान लिया गया और समन जारी कर उन्हें 09.07.2010 से पहले न्यायालय के सामने पेश होने के लिए कहा गया।

7. उक्त आदेश से असंतुष्ट होकर, उत्तरदाताओं ने विद्वान सत्र न्यायाधीश के समक्ष 2010 की आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 108 को प्राथिमिकता दी, जिसमें अन्य बातों के अलावा, यह तर्क दिया गया कि

प्रतिवादियों पर बयाना राशि वापस करने के लिए दबाव डालने के लिए एक गुप्त उद्देश्य से एफआईआर दर्ज की गई थी। वास्तव में, शिकायतकर्ता ने समझौते की शर्तों का उल्लंघन किया था; एफआईआर में लगाए गए आरोपों का पता विवाद की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सक्षम क्षेत्राधिकार वाले सिविल कोर्ट द्वारा साक्ष्य और दस्तावेजों के आधार पर ही लगाया जा सकता है; विद्वान मजिस्ट्रेट ने केस डायरी में किसी भी सामग्री के बिना संज्ञान लिया था; और यह कि सीआरपीसी की धारा 190(1)(बी) के तहत शक्ति का प्रयोग मौजूदा मामले में पूरी तरह से अनुचित था। पुनरीक्षण अदालत ने रिकार्ड पर लाई गई सामग्री को स्कैन किया, केस डायरी का संपूर्ण अवलोकन किया, जांच अधिकारी के आचरण पर ध्यान दिया, जिन्होंने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की थी जिसमें कहा गया था कि रिकार्ड पर लाई गई सामग्री के बावजूद आरोप किसी भी आपराधिक अपराध का गठन नहीं करते हैं। जांच अधिकारी द्वारा जांच के दौरान, जिसे क्षेत्रीय अधिकारी के कहने पर नियुक्त किया गया था, एकत्र की गई सामग्री की इस आशय से जांच की गई कि रघुविंदर सिंह के पास संपत्ति में कोई अधिकार, शीषर्क या हित नहीं था और एक सामान्य पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की गई थी। मूल आवंटि की ओर से प्रश्नगत भूखंड में सभी अधिकारों, शीषर्क और हितों को बेचने, स्थानांतरित करने और व्यक्त करने के लिए अपनी पत्नी के पक्ष में और पित और पत्नी ने शिकायतकर्ता से पावर ऑफ अटॉर्नी के निष्पादन के भौतिक तथ्यों को छुपाया था और राय

दी थी कि शिकायतकर्ता के साथ बातचीत की शुरुआत से ही दोनों आरोपी व्यक्तियों का इरादा धोखाधड़ी और बेईमानी का था और इसलिए, आरोप प्रथम दृष्टया एक आपराधिक अपराध का गठन करते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि यह नागिरक प्रकृति का एक शुद्ध और सरल विवाद था। इस दृष्टिकोण से उन्होंने विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश पर अनुमोदन की मुहर लगा दी।

8. पुनरीक्षण में असफलता ने उत्तरदाताओं को रिट याचिका में उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए मजबूर किया और रिट कोर्ट ने माना कि एफआईआर में लगाए गए आरोपों और जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि तत्काल जहां तक पति का सवाल है, मामला सीधा-सीधा अनुबंध के उल्लंघन का है, जिस पर कोई आपराधिक दायित्व नहीं बनता है और आईपीसी की धारा 406 और 420 के तहत अपराध के लिए प्रथम दृष्टया मामला विचारणीय है। हालांकि, पत्नी के खिलाफ लगाए गए आरोपों से निपटने के दौरान, उच्च न्यायालय ने पाया कि शिकायतकर्ता द्वारा उसे कोई संपत्ति नहीं सौंपी गई थी और इसके अलावा उनके बीच कोई अनुबंध की गोपनीयता नहीं थी, वह इसका खुलासा करने के लिए किसी कानूनी बाध्यता के तहत नहीं थी। शिकायतकर्ता ने कहा कि उसके पास संबंधित संपत्ति को बेचने और अन्यत्र स्थानांतरित करने के लिए मूल आवंटि से एक पंजीकृत पावर ऑफ

अटॉर्नी है और तथ्यों के ऐसे गैर-प्रकटीकरण को आईपीसी की धारा 406 या धारा 420 के तहत अपराध नहीं माना जा सकता है। इस दृष्टिकोण से उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और पत्नी, प्रतिवादी संख्या 2 को संज्ञान लेने और उसे तलब करने के आदेश को रद्द कर दिया।

9. हमने अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री अमित खेमका और प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री चेतन शर्मा को सुना है।

10. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री खेमका द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उच्च न्यायालय रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री की जांच नहीं कर सकता था जैसे कि वह दोषिसिद्ध के फैसले के खिलाफ अपील में बैठा हो और उसने कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को नजरअंदाज करने में भी गलती की हो। आदेश संवेदनशील रूप से अतिसंवेदनशील, उनका आगे यह कहना है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने सभी तथ्यों पर विचार किया था और उचित रूप से राय दी थी कि संज्ञान लेने का आदेश त्रुटिपूर्ण नहीं हो सकता है, लेकिन उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं थी और गैर- प्रकटीकरण महत्वपूर्ण नहीं था, इसके निष्कर्ष में पूरी तरह से गलती हुई है और इसलिए, आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

11. विद्वान वरिष्ठ वकील श्री चेतन शर्मा ने उपरोक्त तर्कों का विरोध करते हुए कहा कि बेचने के समझौते पर हस्ताक्षर करने के समय प्रतिवादी नंबर 2 की उपस्थिति मात्र आईपीसी की धारा 420 के तहत अपराध नहीं है क्योंकि वह दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर नहीं किए और न ही गवाह के रूप में उसका समर्थन किया। उनके द्वारा आग्रह किया गया है कि उस पर कोई आपराधिक दायित्व नहीं डाला जा सकता है, क्योंकि आपराधिकता को आकर्षित करने के लिए अनिवार्य शर्त शुरू से ही बेईमान इरादे दिखाना है जो कि मौजूदा मामले में मौजूद नहीं है। उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि यदि उसके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाती है तो यह अपीलकर्ता द्वारा एक महिला को शामिल करने के लिए अपनाई गई व्यावसायिक रणनीति पर प्रीमियम लगाएगा ताकि उल्लंघन के बावजूद समझौते पर पहुंचने के लिए मामले में अधिक सौदेबाजी की शक्ति हो सके। उसके द्वारा अनुबंध का विद्वान वरिष्ठ वकील आगे तर्क देंगे कि अपीलकर्ता ने विरोधाभासी रुख अपनाया है क्योंकि एक तरह से उसने जब्त की गई राशि की मांग की थी और दूसरे तरीके से आपराधिक कानून को लागू करने के लिए एफआईआर दर्ज की थी जो कि अस्वीकार्य है। उक्त तर्कों को मजबूत करने के लिए हृदय राजन पीडी में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया गया है। वर्मा और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य [एआईआर 2000 ऐसेसी 2341], मुरारी लाल गुप्ता बनाम गोपी सिंह

[(2006) 2 ऐसेसीसी (सीआरआई) 430] और बी. सुरेश यादव बनाम शरीफा बी और अन्य [(2007) 13 ऐसेसीसी 107]।

12. सबसे पहले, यह बताना आवश्यक है कि एफआईआर, विरोध याचिका और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश के अवलोकन पर, यह प्रदर्शित होता है कि जांच के विभिन्न चरणों में जांच अधिकारियों द्वारा अलग-अलग विचार व्यक्त किए गए थे। और विद्वान मजिस्ट्रेट ने इसकी जांच की है और आरोपों पर ध्यान देते हुए अंतिम रिपोर्ट को खारिज करने और संज्ञान लेने की शक्ति का प्रयोग किया है। संज्ञान लेने वाली अदालत और पुनरीक्षण अदालत ने यह विचार व्यक्त किया है कि दोनों प्रतिवादियों ने शिकायतकर्ता के साथ बातचीत की शुरुआत से ही बेईमान इरादों का पोषण किया था और प्रतिवादी नंबर 2 के पक्ष में पावर ऑफ अटॉर्नी के निष्पादन का गैर-प्रकटीकरण किया था। इसमें मूल मालिक द्वारा एक महत्वपूर्ण चूक के रूप में बताया गया है जिसके परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता को क्षति हुई है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील का कहना था कि उच्च न्यायालय ने यह देखकर खुद को गुमराह किया है कि पत्नी को कोई संपत्ति नहीं सौंपी गई थी और इसके अलावा अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं थी और उसकी ओर से गैर-प्रकटीकरण एक अपराध नहीं है। प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील ने अनुबंध की गोपनीयता की अनुपस्थिति के तथ्य पर प्रकाश डाला है। रिकार्ड पर लाए गए आरोपों के

संबंध में, जो प्रश्न विचार के लिए उभरता है वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा यहां प्रतिवादी नंबर 2 के खिलाफ संज्ञान लेने के आदेश को रद्द करने के लिए अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना उचित है।

13. इस समय, हम ध्यान दे सकते हैं कि प्रतिवादी संख्या 3, रघुविंदर सिंह ने 2011 की ऐसेएलपी (सीऔरएल) संख्या 3894 दायर की थी, जिसे 13.5.2011 को खारिज कर दिया गया है।

14. जैसा कि वर्तमान में सलाह दी गई है, हम उन निर्णयों पर चर्चा करने के इच्छुक हैं जिनकी प्रतिवादी के विद्वान वरिष्ठ वकील ने हमें सराहना की है। हृदय राजन पं. में. वर्मा (सुप्रा) ने एक शिकायत दर्ज की थी कि आरोपी व्यक्तियों ने जानबूझकर और जानबूझकर कुछ तथ्यों को छिपाकर और शिकायतकर्ता को झूठी और मनगढ़ंत जानकारी और आश्वासन देकर प्रतिवादी समाज और शिकायतकर्ता को गुमराह और प्रेरित किया था ताकि उसे विश्वास हो जाए कि सौदा हो गया है। न्यायपूर्ण और झंझटों से मुक्त था। आगे आरोप यह था कि आरोपी व्यक्ति ने अपने लिए गलत लाभ प्राप्त करने और सोसायटी और शिकायतकर्ता को गलत नुकसान पहुंच आने के इरादे से ऐसा किया था और उन्होंने शिकायतकर्ता को बातचीत में शामिल होने और अग्रिम प्रतिफल राशि प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया था। दो न्यायाधीशों की पीठ ने हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल [1992 सप्ल (1) ऐसेसीसी 335] के फैसले का हवाला दिया, जिसमें

इस न्यायालय ने उदाहरण के माध्यम से मामलों की कुछ श्रेणियों की गणना की है, जिसमें अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या अतिर्नित शक्तियां शामिल हैं। सीआरपीसी की धारा 482 के तहत या तो अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। बेंच ने रूपेन देयोल बजाज (श्रीमती) बनाम कंवर पाल सिंह गिल [एआईआर 1996 एसेसी 309], राजेश बजाज बनाम स्टेट एनसीटी ऑफ दिल्ली [(1999) 3 एसेसीसी 259] और केरल राज्य बनाम के फैसलों का भी हवाला दिया। ओसी कु ट्टन [एआईआर 1999 एसेसी 1044] जिसमें भजन लाल (सुप्रा) में निर्धारित सिद्धांत को दोहराया गया था। अदालत ने सवाल उठाया कि क्या अपीलकर्ताओं का मामला भजनलाल (सुप्रा) में बताई गई किसी भी श्रेणी के अंतर्गत आता है और क्या एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप अगर पूरी तरह से स्वीकार कर लिए जाएं तो आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ मामला बनता है। उसमें, उपरोक्त उद्देश्य के लिए अपीलकर्ताओं के खिलाफ कथित अपराधों, अपराधों की सामग्री और शिकायत में दिए गए बयानों का विज्ञापन किया गया था। न्यायालय ने यह विचार किया कि अपीलकर्ताओं द्वारा किया गया मुख्य अपराध आईपीसी की धारा 420 के तहत दंडनीय धोखाधड़ी है। 'धोखाधड़ी' की परिभाषा पर विचार करते हुए न्यायालय ने कहा कि कार्यों के दो अलग-अलग वर्ग हैं जिन्हें धोखा देने वाले व्यक्तियों को करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। सबसे पहले,

उसे धोखे से या बेईमानी से किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति देने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अनुभाग में निर्धारित कृत्यों का दूसरा वर्ग ऐसा कुछ भी करना या करने से चूकना है जिसे धोखा दिया गया व्यक्ति नहीं करेगा या करने से चूक जाएगा यदि उसे धोखा न दिया गया हो। प्रथम श्रेणी के मामलों में उत्प्रेरण कपटपूर्ण या बेईमान होना चाहिए। कृत्यों के दूसरे वर्ग में, उत्प्रेरण जानबूझकर होना चाहिए लेकिन कपटपूर्ण या बेईमान नहीं होना चाहिए। इसके बाद, बेंच ने इस प्रकार कहा:-

“16. प्रश्न का निर्धारण करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि केवल अनुबंध के उल्लंघन और धोखाधड़ी के अपराध के बीच अंतर ठीक है। यह उत्प्रेरण के समय अभियुक्त के इरादे पर निर्भर करता है जिसे उसके बाद के आचरण से आंका जा सकता है लेकिन इसके लिए बाद का आचरण ही एकमात्र परीक्षण नहीं है। केवल अनुबंध का उल्लंघन धोखाधड़ी के लिए आपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता है जब तक कि लेनदेन की शुरुआत में धोखाधड़ी या बेईमानी का इरादा नहीं दिखाया जाता है, यही वह समय है जब अपराध किया गया माना जाता है। इसलिए, इरादा ही अपराध का सार है। किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है

कि वादा करते समय उसका इरादा धोखाधड़ी या बेईमानी का था। वादा पूरा करने में उनकी असफलता के बाद शुरुआत में ही ऐसा दोषपूर्ण इरादा नहीं माना जा सकता, यानी जब उन्होंने वादा किया था।"

15. सिद्धांत निर्धारित करने के बाद बेंच ने शिकायत का उल्लेख किया और राय दी कि शिकायत में दिए गए कथनों को पूरी तरह से पढ़ना और आरोपों को सच मानना, बातचीत की शुरुआत में ही आरोपी की ओर से जानबूझकर धोखे की बात सामने आती है। क्योंकि शिकायत में लेनदेन के बारे में न तो स्पष्ट रूप से बताया गया था और न ही अप्रत्यक्ष रूप से सुझाव दिया गया था। प्रतिवादी नंबर 2 ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप लगाया था कि उन्होंने उसे यह नहीं बताया था कि उनके एक भाई ने विभाजन का मुकदमा दायर किया था जो लंबित था। यह आवश्यकता कि अपीलकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 को संपत्ति का हिस्सा बनाने के लिए जानबूझकर जानकारी का खुलासा नहीं किया गया था, शिकायत में स्पष्ट रूप से या यहां तक कि निहित रूप से आरोपित नहीं किया गया था। इसलिए, शिकायतकर्ता प्रतिवादी नंबर 2 को धोखा देने के लिए बेईमान इरादे का मूल सिद्धांत शिकायत में सभी कथनों को उनके अंकित मूल्य पर स्वीकार करते हुए भी नहीं बनाया गया था और तदनुसार, फैसला सुनाया

गया कि ऐसी स्थिति में आपराधिक कार्यवाही जारी रहने। अभियुक्त न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

16. उपरोक्त निर्णय से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि शिकायत में ऐसा कोई दावा नहीं था कि आरोपी की ओर से धोखा देने का इरादा लेन-देन की बातचीत की शुरुआत से ही अनुपस्थित था जैसा कि उक्त आरोप है। शिकायत में न तो स्पष्ट रूप से किया गया था और न ही अप्रत्यक्ष रूप से सुझाव दिया गया था। इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि केवल गैर-प्रकटीकरण यह था कि उनके एक भाई ने विभाजन का मुकदमा दायर किया था जो लंबित था और यह आरोप अनुपस्थित था कि शिकायतकर्ता को धोखा देने के लिए जानबूझकर ऐसा खुलासा नहीं किया गया था। यह ध्यान देने योग्य है कि इस न्यायालय ने शिकायत याचिका में कुछ प्रकथनों का उल्लेख किया और आरोपों की जांच की और उपरोक्त निष्कर्ष दर्ज किया। वर्तमान मामला, जैसा कि हम समझते हैं, पूरी तरह से एक अलग तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर खड़ा है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला है कि बातचीत के समय शुरू से ही धोखा देने का इरादा था, लेकिन उच्च न्यायालय ने इसे इस आधार पर खारिज कर दिया कि प्रतिवादी नंबर 2 केवल उपस्थित था और कोई नहीं था। शिकायतकर्ता और उसके बीच अनुबंध की गोपनीयता। हम अन्य अधिकारियों पर चर्चा करने के बाद बाद के चरण में उक्त

तथ्यात्मक विश्लेषण पर विचार करेंगे, जिस पर उत्तरदाताओं के विद्वान वरिष्ठ वकील ने भरोसा जताया है।

17. मुरारी लाल गुप्ता (सुप्रा) मामले में दो न्यायाधीशों की खंडपीठ ने निम्नलिखित विश्लेषण पर आईपीसी की धारा 406 और 420 के तहत स्थापित आपराधिक शिकायत को रद्द कर दिया:-

“शिकायत में ऐसा कोई दावा नहीं किया गया है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि याचिकाकर्ता द्वारा कोई धोखाधड़ी या बेईमानी का प्रलोभन दिया गया था जिसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी ने पैसे अलग कर लिए। यह प्रतिवादी का मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता के पास संपत्ति नहीं है या याचिकाकर्ता बेचने के समझौते में प्रवेश करने में सक्षम नहीं था या संपत्ति में प्रतिवादी को स्वामित्व हस्तांतरित नहीं कर सकता था। केवल इसलिए कि बेचने का समझौता किया गया था, जिस समझौते का याचिकाकर्ता सम्मान करने में विफल रहा, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी को धोखा दिया है। प्रथम दृष्टया भी आईपीसी की धारा 420 या धारा 406 के तहत मुकदमा चलाने का कोई मामला नहीं बनता है। प्रतिवादी द्वारा और वह भी मधेपुरा में याचिकाकर्ता, जो दिल्ली का निवासी है,

के खिलाफ दायर की गई शिकायत याचिकाकर्ता पर प्रतिवादी के साथ समझौता करने के लिए दबाव डालने का एक प्रयास प्रतीत होती है।

हमारी सुविचारित राय में उपरोक्त मामले में तथ्यात्मक स्थित स्पष्ट रूप से भिन्न है और इसलिए, हमें यह कहने में कोई हिचिकचाहट नहीं है कि उक्त निर्णय मौजूदा मामले पर लागू नहीं होता है।

18. बी. सुरेश यादव (सुप्रा) में शिकायतकर्ता, जो मुकदमे में प्रतिवादी थी, ने एक लिखित बयान दायर किया था जिससे यह स्पष्ट था कि उसे हर समय मुकदमे की संपत्ति पर बने कमरों के कथित विध्वंस के बारे में पता था। लिखित बयान में यह तर्क दिया गया कि वाद की संपत्तियां बिक्री विलेख की विषय-वस्तु से भिन्न थीं। लिखित बयान दर्ज करने के बाद प्रतिवादी ने आईपीसी की धारा 420 के तहत शिकायत दर्ज की थी। न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि इस बात पर विवाद था कि जिस संपत्ति पर कथित तौर पर दो कमरे स्थित थे, वह वही संपत्ति थी जो बिक्री विलेख की विषय-वस्तु थी या नहीं और इस संबंध में एक सिविल मुकदमा पहले ही दायर किया जा चुका था। उक्त विवाद के लिए न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि विक्रय विलेख के निष्पादन के समय आरोपी ने कोई गलत या भ्रामक प्रतिनिधित्व नहीं किया था और

उसकी ओर से कुछ भी करने में कोई चूक नहीं हुई थी जो वह कर सकता था। इन परिस्थितियों में, न्यायालय ने राय दी कि पक्षों के बीच विवाद मूल रूप से एक नागरिक विवाद था। यहां यह नोट करना उचित है कि न्यायालय ने यह भी कहा कि जब किसी शिकायत याचिका में कोई रुख अपनाया गया हो जो किसी सिविल मुकदमे में उसके द्वारा उठाए गए रुख के विपरीत या असंगत हो, तो वही महत्व रखता है और यदि कोई आरोप था कि अभियुक्त ने उक्त दोनों कमरों को तुड़वा दिया और विक्रय पत्र के निष्पादन के समय उक्त तथ्य छुपा लिया तो मामला कुछ और होता। इस दृष्टिकोण के चलते, इस न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया क्योंकि यह अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग था। तथ्यात्मक स्कोर के एक्स-रे पर, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि उक्त घोषणा से संबंधित लिस को कोई सहायता नहीं मिलती है।

19. इससे पहले कि हम मामले में रिकार्ड पर लाई गई सामग्री को स्कैन और विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ें, ऐसा प्रतीत होता है कि यह कुछ अधिकारियों को संदर्भित करता है जिसमें धोखाधड़ी की सामग्री पर प्रकाश डाला गया है। केरल राज्य बनाम ए. परीड पिल्लई और अन्य [एआईआर 1973 ऐसेसी 326] में, दो-न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनाया कि किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी के अपराध का दोषी ठहराने के लिए, यह दिखाना होगा कि उस समय उसका इरादा बेईमान था। वादा करने और

इस तरह के बेईमान इरादे का सिर्फ इस तथ्य से अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह बाद में वादा पूरा नहीं कर सका।

20. जीवी राव बनाम एलएचवी प्रसाद और अन्य [(2000) 3 एसेसीसी 693] में, इस न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:-

"7. जैसा कि ऊपर बताया गया है, धारा 415 के दो भाग हैं। जबकि पहले भाग में, व्यक्ति को शिकायतकर्ता को "बेईमानी से" या "धोखाधड़ी से" किसी भी संपत्ति को वितरित करने के लिए प्रेरित करना चाहिए; दूसरे भाग में, व्यक्ति को जानबूझकर शिकायतकर्ता को कोई कार्य करने या न करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि पहले भाग में प्रलोभन बेईमानी या कपटपूर्ण होना चाहिए। दूसरे भाग में, प्रलोभन जानबूझकर होना चाहिए। जैसा कि इस न्यायालय ने जसवन्तराय मणिलाल अखाने बनाम बॉम्बे राज्य [एआईआर 1956 एसेसी 575] में देखा था, दोषी इरादा धोखाधड़ी के अपराध का एक अनिवार्य घटक है। इसलिए, धोखाधड़ी के अपराध के लिए किसी व्यक्ति की दोषिसिद्ध सुनिश्चित करने के लिए, उस व्यक्ति की ओर से "मनुष्य की भावना" स्थापित की जानी चाहिए। महादेव प्रसाद बनाम स्टेट ऑफ डब्ल्यूबी

[एआईआर 1954 एसेसी 724] में भी यह देखा गया कि धोखाधड़ी का अपराध गठित करने के लिए, धोखा देने का इरादा उस समय अस्तित्व में होना चाहिए जब प्रलोभन की पेशकश की गई थी।"

21. एसेएन पलानीटकर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य [एआईआर 2001 एसेसी 2960] में, यह निर्धारित किया गया है कि धोखाधड़ी का अपराध गठित करने के लिए, धोखा देने का इरादा उस समय अस्तित्व में होना चाहिए जब प्रलोभन दिया गया हो। बनाया गया था। यह दर्शाना आवश्यक है कि वादा करते समय किसी व्यक्ति का इरादा कपटपूर्ण या बेईमान था, यह कहने के लिए कि उसने धोखाधड़ी का कार्य किया है। बाद में वादा पूरा करने में विफलता को धोखाधड़ी की ओर ले जाने वाला कृत्य नहीं माना जा सकता।

22. उक्त मामले में आपराधिक विश्वासघात और धोखाधड़ी की सामग्री से निपटते समय, खंडपीठ ने इस प्रकार कहा:-

"9. विश्वास के आपराधिक उल्लंघन का गठन करने के लिए सामग्री हैं: (i) किसी व्यक्ति को संपत्ति सौंपना या संपत्ति पर कोई प्रभुत्व सौंपना (ii) उस व्यक्ति को सौंपा गया (ए) बेईमानी से उस संपत्ति का दुरुपयोग करना या अपने स्वयं के उपयोग के लिए परिवर्तित करना; या (बी) उस संपत्ति

का बेईमानी से उपयोग या निपटान करना या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने के लिए कष्ट देना (i) कानून के किसी भी निर्देश का उल्लंघन करना जिसमें ऐसे ट्रस्ट का निर्वहन करने का तरीका निर्धारित करना है, (ii) किए गए किसी भी कानूनी अनुबंध का उल्लंघन करना, ऐसे भरोसे के निर्वहन को छूना।"

10. धोखाधड़ी के अपराध की सामग्री हैं: (i) किसी व्यक्ति को धोखा देकर धोखाधड़ी या बेईमानी से प्रेरित किया जाना चाहिए, (ii) (ए) इस तरह से धोखा दिए गए व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति देने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, या इस बात पर सहमति देना कि कोई भी व्यक्ति किसी भी संपत्ति को बरकरार रखेगा; या (बी) इस प्रकार धोखा खाए गए व्यक्ति को जानबूझकर ऐसा कुछ करने या करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए जो वह नहीं करता या छोड़ देता अगर उसे धोखा न दिया गया होता; और (iii) (ii)(बी) के अंतर्गत आने वाले मामलों में, चूक का कार्य वह होना चाहिए जो प्रेरित व्यक्ति के शरीर, दिमाग, प्रतिष्ठा या संपत्ति को नुकसान पहुंचाता है या नुकसान पहुंचा सकता है।

23. वतर्मान मामले के तथ्यों पर आते हुए, एफआईआर से यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी संख्या 2 के खिलाफ आरोप न केवल उसकी उपस्थिति से संबंधित हैं, बल्कि उसकी पूर्ण चुप्पी और उसके पति के साथ मिलीभगत

और शक्ति का उपयोग करके संपत्ति के हस्तांतरण से संबंधित है। मोनिका गोयल के पक्ष में वकील की। ग्राफिक रूप से यह भी स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता ने आरोप लगाया था कि रघुविंदर सिंह और उनकी पत्नी सविता सिंह ने उनसे साइट पर मुलाकात की थी, पंजीकृत समझौता दिखाया था और उस समय उन्हें नकद और चेक दिए गए थे। एफआईआर में यह भी उल्लेख किया गया है कि 28.7.2008 को सविता सिंह को उक्त भूखंड का कब्जा प्राप्त हुआ था और उसी दिन इसे मोनिका गोयल के नाम पर स्थानांतरित कर दिया गया था। यह भी विचारणीय है कि 28.2.2007 को, रघुविंदर सिंह और सविता सिंह ने उप-रिजिस्ट्रार के कार्यालय में दो दस्तावेज तैयार किए और पंजीकृत किए थे, जिसमें एक रघुविंदर सिंह के पक्ष में बेचने का समझौता और दूसरा जनरल पावर ऑफ अटॉर्नी पत्नी के पक्ष में शामिल था। पति-पत्नी द्वारा मिलीभगत का आरोप साफ तौर पर बताया गया है। जांच के दौरान, जैसा कि पहले कहा गया है, कई तथ्य सामने आए लेकिन उन्हें नजरअंदाज कर दिया गया और एक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। विरोध याचिका में शिकायतकर्ता ने जांच के दौरान जो कुछ सामने आया, उसके बारे में विस्तार से बताया था। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने केस डायरी और एफआईआर के अवलोकन के बाद यह विचार व्यक्त किया कि दोनों आरोपियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 406 और 420 के तहत मामला बनाया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश, सामग्री और बताई गई भूमिका का उल्लेख करने के बाद, उसी से सहमत

हुए। उच्च न्यायालय ने उक्त विश्लेषण को इस आधार पर स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि यह केवल उपस्थिति थी और इसके अलावा शिकायतकर्ता और प्रतिवादी नंबर 2 के बीच अनुबंध की कोई गोपनीयता नहीं थी।

24. इस स्तर पर, हम उपयोगी रूप से ध्यान दे सकते हैं कि कभी-कभी कोई मामला स्पष्ट रूप से नागरिक प्रकृति का लग सकता है या इसमें वाणिज्यिक लेनदेन शामिल हो सकता है, लेकिन ऐसे नागरिक विवादों या वाणिज्यिक विवादों में कुछ परिस्थितियों में आपराधिक अपराधों के तत्व भी शामिल हो सकते हैं और ऐसे विवादों में शामिल हो सकते हैं। हालाँकि, ये नागरिक विवाद भी हैं, जिन पर विचार किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में, हम मोहम्मद इब्राहिम और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य [(2009) 8 एसेसीसी 751] का एक अंश पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं:-

"8. इस न्यायालय ने बार-बार शिकायतकर्ताओं की बढ़ती प्रवृत्ति की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो ऐसे मामलों को दण्डनीय अपराध का जामा पहनाने की कोशिश कर रहे हैं जो अनिवार्य रूप से और पूरी तरह से नागरिक प्रकृति के हैं, जाहिर तौर पर या तो आरोपी पर दबाव डालने के लिए, या उसके प्रति शत्रुता के कारण अभियुक्त बनाना, या अभियुक्त को उत्पीड़न के अधीन करना। आपराधिक अदालतों को यह

सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके समक्ष कार्यवाही का उपयोग हिसाब-किताब निपटाने या नागरिक विवादों को निपटाने के लिए पार्टियों पर दबाव डालने के लिए नहीं किया जाए। लेकिन साथ ही, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नागरिक प्रकृति के कई विवादों में आपराधिक अपराधों की सामग्री भी शामिल हो सकती है और यदि ऐसा है, तो उन्हें आपराधिक अपराधों के रूप में आजमाना होगा, भले ही वे नागरिक विवादों की श्रेणी में भी हों। (देखें जी. सागर सूरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2000) 2 एसेसीसी 636] और इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड [(2006) 6 एसेसीसी 736])"

25. इस संदर्भ में हम ऑल कार्गो मूवर्स (आई) प्राइवेट लिमिटेड के एक पैराग्राफ को उपयोगी रूप से देख सकते हैं। लिमिटेड वी. धनेश बदरमल जैन एवं अन्य। [एआईआर 2008 एसेसी 247]

".....जहां एक सिविल मुकदमा लंबित है और शिकायत याचिका सिविल मुकदमा दायर करने के एक साल बाद दायर की गई है, हम यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या उक्त आरोप प्रथम दृष्टया आदान-प्रदान किए गए पत्राचार पर ध्यान नहीं दे सकते हैं पार्टियों और अन्य स्वीकृत

दस्तावेज। यह कहना एक बात है कि न्यायालय इस समय आरोपी के बचाव पर विचार नहीं करेगा लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि इस न्यायालय के अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए, स्वीकृत दस्तावेजों को देखना भी अस्वीकार्य है। जब यह दुर्भावनापूर्ण या अन्यथा अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग पाया जाता है तो आपराधिक कार्यवाही को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। वरिष्ठ न्यायालयों को इस शक्ति का प्रयोग करते हुए न्याय के उद्देश्य को पूरा करने का भी प्रयास करना चाहिए।"

26. राजेश बजाज बनाम राज्य एनसीटी दिल्ली और अन्य [एआईआर 1999 ऐसेसी 1216] में, एक मामले से निपटते समय जहां उच्च न्यायालय ने एक एफआईआर को रद्द कर दिया था, इस न्यायालय ने राय दी कि शिकायत याचिका में वर्णित तथ्य एक वाणिज्यिक लेनदेन का खुलासा कर सकते हैं या पैसे का लेन-देन, लेकिन यह मानने का शायद ही कोई कारण है कि ऐसे लेन-देन से धोखाधड़ी का अपराध नहीं होगा। आगे बढ़ते हुए, बेंच ने इस प्रकार कहा:-

"11 अभिधारणा का सार उस व्यक्ति का इरादा है जो पीड़ित को अपने प्रतिनिधित्व के लिए प्रेरित करता है, न कि लेन-देन की प्रकृति जो यह समझने में निर्णायक बन जाएगी कि

अपराध हुआ था या नहीं। शिकायतकर्ता ने शिकायत के मुख्य भाग में कहा है कि उसे यह विश्वास दिलाया गया था कि प्रतिवादी चालान प्राप्त होने पर भुगतान का सम्मान करेगा, और शिकायतकर्ता को बाद में एहसास हुआ कि प्रतिवादी के इरादे स्पष्ट नहीं थे। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि प्रतिवादी ने सामान प्राप्त करने के बाद उसे दूसरों को बेच दिया और फिर भी उसने पैसे का भुगतान नहीं किया। इस तरह के कथन प्रथम दृष्टया अधिकारियों द्वारा जांच का मामला बनेंगे।"

27. हमने ऐसे मुद्दों से निपटने के दौरान न्यायालय की भूमिका पर प्रकाश डालने के लिए उपरोक्त निर्णयों का उल्लेख किया है। हमारी सुविचारित राय में वर्तमान मामला उस श्रेणी में आता है जिसे इस स्तर पर स्वीकार किए गए दस्तावेजों या एक एफआईआर में लगाए गए आरोपों या जांच में जो सामने आया है या विरोध याचिका में कहा गया, उस आधार पर पूरी तरह से नागरिक प्रकृति का नहीं कहा जा सकता है। हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि प्रथम दृष्टया यह आरोप है कि शिकायतकर्ता को पैसे देने के लिए प्रेरित करने का दोषी इरादा था। हम यह स्पष्ट करने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां शुरू में किया गया वादा बाद में पूरा नहीं हो सका। यह ऐसा मामला

नहीं है जहां यह कहा जा सकें कि भले ही आरोपों को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए, फिर भी कोई मामला नहीं बनता है। इस बात पर जोर देने की जरूरत नहीं है कि उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय बहुत सतर्क दृष्टिकोण अपनाना होगा। सेंट्रल ब्यूरो ऑफ इनवेस्टीगेशन बनाम रवि शंकर श्रीवास्तव, औईएएसे व अन्य, एच.एसे. चौधरी व रघुबीर सरन (डॉ.) बनाम बिहार राज्य [एआईआर 1964 एसेसी 1], में न्यायालय ने देखा कि आईपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास मौजूद शक्तियां बहुत व्यापक हैं और शक्ति की प्रचुरता के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। अदालत को यह देखने में सावधानी बरतनी चाहिए कि इस शक्ति के प्रयोग में उसका निर्णय ठोस सिद्धांतों पर आधारित है और ऐसी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग वैध अभियोजन को दबाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इस न्यायालय ने आगे कहा है कि उच्च न्यायालय के लिए यह उचित नहीं है कि वह सभी संभावनाओं के आलोक में शिकायतकर्ता के मामले का विश्लेषण करे ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि कोई दोषसिद्ध टिकाऊ होगी या नहीं और ऐसे आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचें कि कार्यवाही चल रही है, रद्द किया जाए. आगे यह स्पष्ट किया गया है कि इससे पहले सामग्री का आकलन करना और यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि शिकायत पर आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। खंडपीठ ने राय दी है कि मामले का सूक्ष्म विश्लेषण आवश्यक

नहीं है और शिकायत को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और यदि शिकायतकर्ता के शपथ पर दिए गए बयान के आलोक में आरोपों पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपराध या अपराधों का खुलासा किया गया है और यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि शिकायत दुर्भावनापूर्ण, तुच्छ या कष्टप्रद है, ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का कोई औचित्य नहीं होगा।

28. और. कल्याणी बनाम जनक सी. मेहता और अन्य [(2009) 1 ऐसेसीसी 516] में, हमीदा बनाम रशीद [(2008) 1 ऐसेसीसी 474] और उड़ीसा राज्य बनाम सरोज कुमार साहू के फैसलों का हवाला देने के बाद [(2005) 13 ऐसेसीसी 540], इस न्यायालय ने अंततः निम्नलिखित प्रस्तावों को खारिज कर दिया:-

“15. उक्त निर्णयों से जो कानून के प्रस्ताव सामने आते हैं वे हैं:

ए। उच्च न्यायालय आम तौर पर किसी आपराधिक कार्यवाही और विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने के लिए अपने अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा, जब तक कि उसमें निहित आरोप, भले ही अंकित मूल्य दिए गए हों और उनकी संपूर्णता में सही माने गए हों, कोई संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं किया गया है।

बी। उक्त उद्देश्य के लिए, न्यायालय, बहुत ही असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर, बचाव पक्ष द्वारा भरोसा किए गए किसी भी दस्तावेज़ पर गौर नहीं करेगा।

सी। ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत संयमित ढंग से किया जाना चाहिए। यदि एफआईआर में लगाए गए आरोप किसी अपराध के घटित होने का खुलासा करते हैं, तो अदालत उससे आगे नहीं बढ़ेगी और आरोपी के पक्ष में किसी भी आपराधिक मनःस्थिति या एक्टस रीअस की अनुपस्थिति का आदेश पारित करेगा।

डी। यदि आरोप एक सिविल विवाद का खुलासा करता है, तो यह अपने आप में यह मानने का आधार नहीं हो सकता है कि आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमित नहीं दी जानी चाहिए।"

29. यह ध्यान देने योग्य है कि उसमें यह देखा गया था कि वरिष्ठ न्यायालय के सर्वोपरि कर्तव्यों में से एक यह देखना है कि जो व्यक्ति बिल्कुल निर्दोष है, उसे झूठी और पूरी तरह से अस्थिर शिकायत के आधार पर अभियोजन और अपमान का सामना नहीं करना पड़े।

30. हाल ही में ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य [(2012) 10 SCC 303] मामले में तीन जजों की बेंच ने देखा है कि:-

“55. अपने संविधान की प्रकृति में, न्याय प्रशासन के दौरान किसी गलती को ठीक करना या अनावश्यक न्यायिक प्रक्रिया को जारी रखने से रोकना उच्च न्यायालय का न्यायिक दायित्व है। यह कानूनी कहावत क्वान्डो लेक्स एलिक्विड एलिकुई कॉन्सिडेट, कॉन्सेडिटोर एट आईडी साइन क्वाल रेस आईपीएसेए ऐसेसे नॉन पोटेस्ट पर आधारित है। इसका पूरा महत्व यह है कि जब भी कुछ भी अधिकृत किया जाता है, और विशेष रूप से यदि, कर्तव्य के मामले के रूप में, कानून द्वारा किया जाना आवश्यक है, तो उस चीज को करना असंभव पाया जाता है जब तक कि कुछ और जो स्पष्ट शब्दों में अधिकृत नहीं किया जाता है, वह भी किया जा सकता है, किया जाए, तो आवश्यक आशय से कुछ और आपूर्ति की जाएगी। ऐसे अभ्यास में एक्स डेबिटो जस्टिटिया अंतर्निहित है; संपूर्ण विचार वास्तविक, पूर्ण और पर्याप्त न्याय करना है जिसके लिए यह अस्तित्व में है। संहिता की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय के पास जो शक्ति है उसका दायरा व्यापक है, लेकिन इसके लिए बहुत सावधानी और सावधानी बरतने की जरूरत है।

31. उपरोक्त मापदंडों को लागू करते हुए हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि न तो एफआईआर और न ही विरोध याचिका दुर्भावनापूर्ण तुच्छ या परेशान करने वाली थी। यह ऐसा मामला भी नहीं है जहां शिकायत में कोई दम न हो। जिस तरह से उस अधिकारी द्वारा जांच

की गई जिसने अंततः अंतिम रिपोर्ट दायर की और जांच को पहले किसी अन्य अधिकारी को स्थानांतरित कर दिया जिसने जांच लगभग पूरी कर ली थी और पूरी केस डायरी जिसे विरोध याचिका प्राइमा में विस्तार से विज्ञापित किया गया है प्रथम दृष्टया पति और पत्नी के खिलाफ मिलीभगत और शुरू से ही धोखा देने के इरादे का मामला बनता है, जिससे वह उन दोनों को बड़ी रकम सौंपने के लिए प्रेरित हो। इतने सारे पहलुओं को न बताने का उनका आचरण, अर्थात्, मूल मालिक द्वारा निष्पादित पावर ऑफ अटॉर्नी, वसीयत और 28.7.2008 को मोनिका सिंह के नाम पर पत्नी द्वारा की गई बिक्री को इस स्तर पर खारिज नहीं किया जा सकता है। इसलिए, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि उच्च न्यायालय ने, असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, संज्ञान लेने के आदेश को रद्द करने के लिए कानून के ठोस सिद्धांतों पर आगे नहीं बढ़ाया था। उच्च न्यायालय ने अनुबंध की गोपनीयता की गैर-मौजूदगी से निर्देशित होकर तथ्यात्मक परिदृश्य की सराहना किए बिना यह देखा कि पत्नी केवल उपस्थित थी। ज्ञात हो, यदि पत्नी का मूल मालिक के साथ किसी भी लेन-देन से कोई लेना-देना नहीं था और उसे चीजों की जानकारी नहीं थी, तो संभवतः उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्वीकार्य हो सकता था, लेकिन जब पत्नी के पास पावर ऑफ अटॉर्नी थी उसके पक्ष में और वसीयत के निष्पादन के बारे में पता था, उसने शिकायतकर्ता से अपने पति के साथ पैसे स्वीकार किए थे, यह कहना बेहद मुश्किल है कि एक निर्दोष व्यक्ति को कष्टप्रद मुकदमे या

अपमान का सामना करने के लिए घसीटा जाता है। प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के संपूर्ण आचरण से पता चलता है कि प्रथम दृष्टया मामला बनता है और इस संबंध में रिकार्ड पर आरोप हैं कि उनका इरादा बातचीत के चरण से धोखा देने का था। यही स्थिति है, हृदय राजन पीडी वर्मा और अन्य (सुप्रा), के निर्णय में जिसकी सराहना श्री शर्मा, विद्वान वरिष्ठ वकील ने की है, जिसके बारे में हम पहले बता चुके हैं, वास्तव में उत्तरदाताओं की सहायता नहीं करता है और हम विस्तार से तथ्यात्मक विश्लेषण करने के बाद ऐसा कहते हैं।

32. हमारे उपरोक्त विश्लेषण के मद्देनजर हम अपील की अनुमित देते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हैं और मजिस्ट्रेट को कानून के अनुसार आगे बढ़ने का निर्देश देते हैं, हालाँकि, हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि यह नहीं समझा जा सकता है कि हमने किसी न किसी रूप में मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त की है और हमारी टिप्पणियों को संज्ञान लेने के आदेश तक ही सीमित माना जाना चाहिए और इससे अधिक कुछ नहीं। विद्वान मजिस्ट्रेट हमारी किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना अपनी योग्यता के आधार पर मामले का फैसला करेगा क्योंकि यह केवल यह मानने के उद्देश्य से किया गया है कि संज्ञान का आदेश प्रथम दृष्टया वैध है और इसमें उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी नीतिशा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।